

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

ISSN 0974-0066

(अंक-71, जुलाई-दिसम्बर, 2016)

संरक्षक

प्रो. राघवेन्द्र पी. तिवारी
कुलपति

प्रधान सम्पादक

प्रो. अम्बिकादत्त शर्मा

सम्पादक

प्रो. निवेदिता मैत्रा
डॉ. पंकज चतुर्वेदी
डॉ. आशुतोष कुमार मिश्र

प्रबन्ध सम्पादक

डॉ. छबिल कुमार मेहेर



डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय

सागर (मध्यप्रदेश) - 470003

दूरभाष : (07582) 264455

ई-मेल : madhyabharti.2016@gmail.com

सम्पादकीय परामर्श मण्डल

- प्रो. वीरेन्द्र मोहन, हिन्दी विभाग
- प्रो. एस.जे. सिंह, मनोविज्ञान विभाग
- प्रो. ए.एन. शर्मा, मानवशास्त्र विभाग
- प्रो. दिवाकर शर्मा, समाजशास्त्र विभाग
- प्रो. पी.पी. सिंह, विधि विभाग
- प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव, इतिहास विभाग
- डॉ. अनुपमा कौशिक, राजनीतिशास्त्र विभाग

मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

अंक-71, जुलाई-दिसम्बर, 2016

ISSN 0974-0066 (पूर्व-समीक्षित अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका)

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

प्रकाशित रचनाओं के अभिमत से डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
या सम्पादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार :

मध्य भारती

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,

सागर (म.प्र.) – 470003

दूरभाष : (07582) 264455

ई-मेल : madhyabharti.2016@gmail.com

आवरण : डॉ. छबिल कुमार मेहेर

मुद्रण :

अमन प्रकाशन

कटरा नमक मंडी, सागर (म.प्र.)

सदस्यता शुल्क	आजीवन	
	प्रति अंक	रु. 2000/-
	रु. 150/-	रु. 4000/-
	व्यक्तिगत	संस्थागत
	रु. 200/-	

अनुक्रमणिका

नारी-विमर्श : पाश्चात्य ज्ञानोदय में स्त्री की वापसी विश्वनाथ मिश्र	5
निराला और उनकी शक्ति-पूजा छबिल कुमार मेहेर	33
कवि-कथाकार कुँवर नारायण की कहानियाँ मिथलेश शरण चौबे	49
✓ आलोचना के स्वायत्त आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आशुतोष	62
कृष्णा सोबती : 'समय सरगम' और वृद्धों की समस्याएँ विपिन शर्मा 'अनहद'	69
मोचीराम कविता का शैली वैज्ञानिक विश्लेषण अफरोज बेगम	81
कामता प्रसाद गुरु का व्युत्पत्ति-विचार : सामर्थ्य और सीमा रवीन्द्र कुमार पाठक	91
आल्हा-ऊदल एवं पृथ्वीराज चौहान माधवी श्रीवास्तव	106
आयुर्वेदिक चिकित्सा का वैदिक स्वरूप शशिकुमार सिंह	113
प्राचीन भारत में राज भगिनी ज्योति सराफ	120
भारतीय किसान आन्दोलन का समाजशास्त्रीय अनुशीलन नंदी पटोदिया	125
भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की भूमिका सुनीता जैन	131
मृत्यु दर्शन सुरेन्द्रसिंह नेगी	139

आलोचना के स्वायत्त आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

आशुतोष

नन्ददुलारे वाजपेयी के समीक्षात्मक निबंधों के संकलन 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' (1942) के प्रकाशन से हिन्दी आलोचना में एक नई दिशा का आरम्भ माना जा सकता है। इस किताब में वाजपेयी जी द्वारा लिखित निबंध तीसरे दशक के हैं जिनमें छायावाद के प्रमुख कवियों और उस समय तक प्रकाश में आये कथाकारों पर विशेष रूप से विचार किया गया है। इन निबंधों का एक संकलन में आने से आलोचना की एक नई और व्यवस्थित दृष्टि का सूत्रपात हुआ जिसे सौष्ठववादी समीक्षा कहा गया।

नन्द दुलारे वाजपेयी ने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत पत्रकारिता से की थी। वे 1930 से 1933 तक इलाहाबाद में 'भारत' नामक पत्र का संपादन किया। बाद के दिनों में काशी के साहित्यिक समाज के सानिध्य में खुद को और अधिक प्रखरता से तैयार किया। हिन्दी की प्रसिद्ध काव्य-धारा 'छायावाद' के प्रमुख आलोचक के रूप में स्थापित हुए। भक्ति काव्य में गहरी पैठ होने के साथ ही अपने समकालीन साहित्य से जुड़ाव में वे छायावादी काव्य के समर्थक के रूप में आगे आए। उस समय 'छायावाद' जैसी नई काव्य प्रवृत्ति के प्रति साहित्य समाज में गहरा विरोध का भाव बना हुआ था। छायावाद के प्रति आचार्य शुक्ल की आलोचना ने छायावादी काव्य महत्ता पर सवाल खड़ा कर दिया था। ऐसे में आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी पहले आलोचक हैं जिन्होंने छायावाद को एक ओर यदि नव जागरण की परंपरा से जोड़ कर देखा वहीं उसकी ऐतिहासिक सामाजिक पृष्ठभूमि को भी उजागर किया।

विकास क्रम की दृष्टि से देखा जाय तो नन्ददुलारे वाजपेयी को शुक्लोत्तर समीक्षा के केन्द्र में रखा जा सकता है। उनकी भूमिका छायावाद युग के जाने-माने प्रतिष्ठित समीक्षक की रही है जो वादों से मुक्त रह कर विशुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण का आग्रही रहा है। वाजपेयी जी ने स्वच्छंदतावादी समीक्षक की स्थिति से आगे बढ़कर सांस्थानिक, सौष्ठववादी और राष्ट्रीय सांस्कृतिक समीक्षा की नई भूमिकाओं का निर्वाह किया। अपनी इस विकास-यात्रा में उनका विशिष्ट देय उनकी सूक्ष्म अंतर्दृष्टि, और स्पष्ट विचार-सरणियों के निर्माण की क्षमता है जो उनकी दार्शनिक प्रवृत्ति और चिन्तनशील व्यक्तित्व का परिणाम है। उनका साहित्य अधिकांशः निबंधात्मक है। 'जयशंकर प्रसाद' (1941), 'महाकवि सूरदास' (1952), 'प्रेमचंद' (1956) और 'कवि निराला' (1965) के अतिरिक्त अन्य कृतियाँ विवेचनात्मक एवं विचारात्मक निबंध के रूप में हैं। 'आधुनिक साहित्य' (1946), 'नया साहित्यः नए प्रश्न' (1955) और 'राष्ट्रीय साहित्य' (1965) उनके आलोच्य युग के कृतित्व के ही प्रमाण हैं। अंतिम कृति 'नयी कविता: पुनर्वीक्षण' में उनकी संतुलित एवं सामाजिक समीक्षा-पद्धति के कई उदाहरण मौजूद हैं।

परिवर्तनशील समाज व्यवस्था और विचार जगत में छायावाद भारतीय आध्यात्मिकता की नवीन परिस्थिति के अनुरूप स्थापना करता है। जिस प्रकार मध्ययुग का जीवन भक्ति-काव्य में व्यक्त हुआ, उसी प्रकार आधुनिक जीवन की अभिव्यक्ति इस काव्य में हो रही है। अंतर है तो इतना ही कि जहाँ पूर्ववर्ती भक्ति काव्य में जीवन के लौकिक और व्यावहारिक पहलुओं को गौण स्थान देकर उनकी उपेक्षा की गई थी, वहाँ छायावादी काव्य प्राकृतिक सौंदर्य और सामयिक जीवन परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है। वह पूर्ववर्ती भक्ति काव्य की प्रकृति निरपेक्षता और संसार मिथ्या की सैद्धांतिक प्रतिक्रियाओं का विरोधी है।¹⁴

आचार्य वाजपेयी छायावाद की इस विशद विवेचना के बाद उसके लक्षण बताते हुए लिखते हैं कि “मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।”¹⁵ यहाँ स्पष्ट है कि वाजपेयी जी आचार्य शुक्ल द्वारा आध्यात्मिकता की व्याख्या से समहत नहीं हैं। छायावाद का इतने जोरदार ढंग से समर्थन करने के साथ ही वाजपेयी जी जयशंकर प्रसाद और उनकी कृतियों पर भी विस्तार से विचार-विमर्श करते हैं। इसके अतिरिक्त वे प्रसाद की अन्य कृतियों, उपन्यास तथा नाटकों पर जो आलोचनात्मक निबंध लिखे वे भी महत्वपूर्ण हैं। वाजपेयी जी साहित्य के प्रगतिशीलता के हिमायती थे। यह प्रगतिशीलता साहित्यकार में उसकी सामाजिक भूमिका से निर्मित होती है, इसमें व्यक्तिगत भाव जैसी चीज नहीं होनी चाहिए। वे लिखते हैं कि “मेरी समझ में साहित्य केवल व्यक्तिगत भावों के प्रदर्शन की भूमि नहीं हो सकता। व्यक्तिगत भाव भी आखिर क्या है? उस व्यक्ति विशेष पर पड़े हुए विभिन्न ज्ञात-अज्ञात उपकरणों का प्रभाव ही तो। वे उपकरण उसे कहाँ से मिले? अपने समय के समाज और सामाजिक चेष्टाओं से।..... यह तो मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने की स्वाभाविक सूचना है।”¹⁶ आचार्य वाजपेयी जी जीवन की ओर उन्मुख और उसकी उद्देश्यपूर्ण नियोजना की प्रगतिशीलता का लक्षण मानते हैं।

आचार्य वाजपेयी जी अपनी इसी कसौटी के आधार पर प्रसाद का मूल्यांकन करते हैं तो वही ‘निराला’ के ‘कुकुरमुत्ता’ को इसीलिए भी विशिष्ट और उल्लेखनीय मानते हैं क्योंकि इसमें लोक प्रचलित भाषा और मुहावरों का बहुत सटीक और सधा हुआ प्रयोग हुआ है। साथ ही सुमित्रानंदन पंत को उनकी चमत्कृत करने वाली कल्पना तथा प्रेम और सौंदर्य की सूक्ष्म मानसिक चित्रण के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं। एक महत्वपूर्ण आलोचक के रूप में आचार्य वाजपेयी अपनी समकालीन रचनाधर्मिता पर सार्थक बहस करते हैं और उसे महत्व दिलाते हैं। प्रेमचंद के संदर्भ में लिखते हुए वे उन्हें आदर्शवादी लेखक बताते हैं। प्रेमचंद के संदर्भ बहुप्रचलित धारणा ‘आदर्शोन्मुख यथार्थवाद’ का विरोध करते हैं। उनका मानना है कि “कोई कलाकार या तो यथार्थवादी ही हो सकता है या आदर्शवादी ही। इसका मिश्रण किसी एक रचना में संभव नहीं है। उनकी (प्रेमचंद) समस्त कृतियों को देखकर ही हम ऐसा कहते हैं, इस प्रकार प्रेमचंद के साहित्य का सांगोपांग अध्ययन करने पर उन्हें आदर्शवादी लेखक ही करना उचित होगा।”¹⁷

इन सभी प्रकरणों पर विचार करते हुए कहा जा सकता है कि आचार्य नंददुलारे वाजपेयी मूलतः छायावादी संवेदना-दृष्टि के समीक्षक हैं। जिस चुनौती और स्पष्टता के साथ उन्होंने छायावादी कवियों पर लिखा उस मानक पर अन्य किसी का मूल्यांकन नहीं किया है। आचार्य वाजपेयी के समीक्षक व्यक्तित्व और उसकी उपलब्धियों पर विचार करते हुए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि “पं. नंददुलारे वाजपेयी की समीक्षा कृतियों को देखने पर ज्ञात होता है कि वे आचार्य रामचंद्र शुक्ल की परंपरा के समीक्षक हैं। उनकी सामर्थ्य शुक्लजी का विरोध करने में नहीं बल्कि उनका समर्थन करने या उनके द्वारा निकाली हुई

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के साहित्यिक विचार और उनकी आलोचना एक खास तरह की सामाजिक और राजनीतिक विचारों के अनुरूप है। ये विचार अपने समय के समस्त वर्चस्वशाली विमर्शों से अलग समन्वयवादी हैं। 'आधुनिक साहित्य' में वे लिखते हैं कि "हमारा साहित्य नयी विचार-धाराओं और नयी परिस्थितियों से प्रभावित होकर नये कला स्वरूपों में प्रकट होता और नयी शैलियों में ढला करता है। उसके क्रमविकास में विरोध के स्थान पर समन्वय का तत्व प्रमुख रहता है। विवादी स्वरों की अपेक्षा संवादी स्वरों की प्रधानता रहती है।"¹ वाजपेयी जी का समन्वय भौतिकवाद और भाववाद से मिलकर बना है। इसके साथ ही वे स्वयं के दृष्टिकोण के सन्दर्भ में 'नया साहित्य: नये प्रश्न' में स्वीकार करते हैं कि "व्यक्ति के असीम आध्यात्मिक मूल्य को स्वीकार करते हुए भी हम व्यक्तिवादी नहीं हैं। सामाजिक अर्थनीति के क्षेत्र में समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार करते हुए भी 'वैज्ञानिक' या 'अवैज्ञानिक' किसी प्रकार के भूतवादी नहीं हैं।"² अर्थात् वे न भाववादी हैं, न भौतिकवादी, न व्यक्तिवादी हैं, न समाजवादी, वे मूलतः समन्वयवादी हैं।

आचार्य समन्वयवादी आचार्य वाजपेयी को अपने समय के वर्चस्वशाली समीक्षा दृष्टियों के विरुद्ध कार्य करना पड़ा। एक तरफ प्रगतिवादी समीक्षा थी जिसका आधार द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद का साहित्य दर्शन था जो जीवन को अर्थ की कसौटी पर रखते हुए सामाजिक और राजनीतिक संबंधों के मूल में आर्थिक संबंधों को ही स्थापित करता है। प्रगतिवादी समीक्षा यह मानती है कि साहित्यकार की वर्गीय चेतना ही साहित्य में आती है, इसके साथ उसकी यह भी मान्यता है कि साहित्य की कोई स्वतंत्र अथवा निरपेक्ष सत्ता नहीं होती। प्रगतिवादी समीक्षा ने आदर्शवाद के विपरीत यथार्थवाद को साहित्यिक दृष्टि के रूप में अपनाया और वर्ग-संघर्ष तथा सर्वहारा के अधिनायकत्व के सिद्धांत को राजनीति और समाजनीति के साथ साहित्य का भी केन्द्रीय तत्व बनाया। इसके अतिरिक्त दूसरी तरफ 'प्रयोगवादी समीक्षा' थी। जो 1943 में 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ शुरू हुई थी। प्रयोगवाद काव्य-क्षेत्र का आंदोलन था और यूरोपीय तथा अमरीकी काव्य से प्रभावित था। इस समीक्षा पद्धति ने व्यक्तिवाद को प्रश्रय दिया और मनोविश्लेषणवाद, कलावाद तथा अस्तित्ववाद के आधार पर काव्य और साहित्य की व्याख्या की।

हिन्दी समीक्षा जगत की इस पृष्ठभूमि के बीच में आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक भूमिकाओं को लेकर अपनी समीक्षा यात्रा शुरू की और उनके लिए कृति तथा कृतिकार राष्ट्र की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपराओं से अविच्छिन्न उदात्त जीवन चेतना के प्रतीक ऐसे आयाम हैं जो व्यक्ति मानस को समष्टि की चेतना प्रदान करते हैं और अपनी समप्रेषणीयता में सर्वग्राही एवं सार्वभौमिक तत्वों का समावेश कर युग के सफल प्रतिनिधित्व करने में सफल होते हैं।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी की समीक्षा दृष्टि सभी तरह के 'वादों' से मुक्त हो केवल शुद्ध साहित्यिक दृष्टिकोण को ही अपनाती है। छायावाद के प्रमुख आलोचक के रूप में कार्य करते हुए भी वे अपने समसामयिक साहित्य के अन्य पहलुओं पर भी प्रकाश डालते हैं। पश्चिमी साहित्य-चिन्तन के इतिहास और यूरोपी साहित्य सर्वश्रेष्ठ की जानकारी से पुष्ट उनकी रागत्मकता नये काव्य और साहित्य की परख में बराबर तत्पर रही है।

आचार्य वाजपेयी ने अपनी समीक्षा दृष्टि के सन्दर्भ में 'नया साहित्य: नये प्रश्न' में 'समीक्षा सम्बन्धी मेरी मान्यता' शीर्षक से विस्तार से विचार किया है। इसके अतिरिक्त 'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' की भूमिका में भी अपनी आलोचना की मान्यताओं को स्पष्ट करते हैं। आलोचना सम्बन्धी अपनी सात चेष्टाओं की

और संकेत किया है- कवि की अन्तर्वृत्तियों का अध्ययन, कलात्मक सौष्ठव का अध्ययन, टेकनीक (शैली) का अध्ययन, समय और समाज तथा उसकी प्रेरणाओं का अध्ययन, कवि की जीवनी और रचना पर उसके प्रभाव का अध्ययन, कवि के दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक विचारों का अध्ययन और काव्य के जीवन-सम्बन्धी सामंजस्य और संदेश का अध्ययन। यहाँ उपस्थित यह क्रम देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वाजपेयी जी के आलोचना की ये कसौटियाँ, विशुद्ध रूप से साहित्यिक हैं, साहित्य से बाहर उन्हीं कसौटियों को स्वीकार करते हैं जिनका साहित्य पर सीधे प्रभाव पड़ता है। इसमें भी वाजपेयी जी मुख्य रूप से कवि की अन्तर्वृत्ति और कलात्मक सौष्ठव पर बल देते हैं। साथ ही वाजपेयी स्वस्थ और समग्र आलोचना के लिए वैयक्तिक मनोविज्ञान पर आधारित समीक्षा पद्धति, मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति, कला विज्ञानवादी पुरानी परम्परा, और उपयोगितावादी या नीतिवादी समीक्षा पद्धति जो पाश्चात्य साहित्यिक प्रभावों से युक्त हैं, से बचने की बात करते हैं। 'नया साहित्य : नये प्रश्न' में अपनी समीक्षा से सन्दर्भित मान्यताओं के बारे में कहते हैं कि "प्राचीन साहित्य मोटे तौर पर आदर्शवादी रही है। उसमें बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव के आकलन का प्रश्न कम रहा है। साहित्य की प्रेषणीयता के सम्बन्ध में 'साधारणीकरण' सम्बन्धी भारतीय धारणा और मत की तुलना तत्सम्बन्धी विदेशी मतों से भी करनी होगी। भाव-विनियोग सम्बन्धी व्यञ्जना या ध्वनि-सिद्धांत भारत की विशेष सम्पत्ति है। इसे हम पश्चिम को भारत की देन के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। साहित्य में भावना और बुद्धि के समन्वय तथा काव्य की नैतिकता जैसे प्रश्नों पर पाश्चात्य साहित्य शास्त्र बहुत समय से विचार कर रहा है। उसकी उपपत्तियों का हमें ध्यान रखना होगा।" यहाँ वाजपेयी जी पाश्चात्य और भारतीय साहित्य सिद्धांतों के उचित और उपयोगिता तत्वों के समन्वय की बात कहते हैं।

वाजपेयी जी भारतीय आदर्शोन्मुखता को विकासोन्मुख यथार्थवाद के रूप में महत्व देते हैं। साथ ही साहित्य के स्वास्थ्य के लिए 'प्रकृतिवादी यथार्थवाद' 'अन्तश्चेतनावादी यथार्थवाद' और 'निराशा तथा कुण्ठावादी यथार्थवाद' का साहित्य में निषेध बताते हुए 'सामाजिक यथार्थवाद' को राष्ट्रीय चेतना के वृद्धि में सहयोगी मानते हैं। नई कविता की प्रवृत्तियों जैसे- क्षणवाद, संशयवाद, लघुमानववाद, अस्तित्ववाद, आदि का विरोध करने वाले आचार्य वाजपेयी बाद के दिनों में 'नई-कविता' में आ रही समरसता की सराहना करते हैं और उस समरसता को भारतीय काव्य-चिन्तन, दर्शन और विचार-धाराओं के योग से निर्मित मानते हैं। वाजपेयी जी के समीक्षक व्यक्तित्व के विकास के कई चरण हैं। 'नया साहित्य : नये प्रश्न' के 'निष्कर्ष' में उन्होंने अपने प्रारम्भिक आलोचक रूप से समझाते हुए उसके विकास सूत्रों को स्पष्ट किया है जो इस प्रकार हैं -

1. साहित्य और जीवन का सम्बंध।
2. मानव-जीवन के विविध रूपों की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है, पर वह किस विशेष प्रकार से होती है।
3. मानव-जीवन (काव्य-वस्तु) और कल्पना प्रकार में किस प्रकार का सम्बन्ध है? क्या वस्तु पूर्णतः प्रकार में समाहित हो जाती है, या कुछ शेष भी बचती है? दूसरे शब्दों में क्या कल्पना के माध्यम के अतिरिक्त किसी अन्य माध्यम से भी मानव-जीवन की अभिव्यक्ति साहित्य में हो सकती है?
4. कल्पना का स्वरूप क्या है?
5. 'रूप' या 'भावाश्रित रूप' क्या पदार्थ है और साहित्य में इसकी विशेष प्रकृति क्या है?
6. साहित्य में शब्द-प्रयोग की विशेषता क्या होती है?
7. इस सम्पूर्ण साहित्य व्यापार का लक्ष्य क्या है?

साहित्य के ये सूत्र शास्त्रीय और स्वच्छंदतावादी हैं। वाजपेयी जी के समीक्षा का प्रयोजन इन दोनों का संयोजन है। वाजपेयी जी की दृष्टि में साहित्य और कला दोनों का कार्य समाज और व्यक्ति की भावनाओं के परिष्कार और उन्नयन करना है। उन्होंने लिखा है कि “साहित्य एक अन्तरंग प्रक्रिया है, जो जन-मन का संस्कार करती है, बौद्धिक विकास में योग देती है और समस्त मनुष्यों की समानता का उद्घोष करती है। साहित्यकार मानकर चलता है कि मनुष्य मात्र में समान-हृदय, समान बुद्धि और समान विवेक की सम्भावना है और इस सम्भावना का अधिकार मनुष्य मात्र को है।”⁵ उनके अनुसार ‘सार्वजनिकता’ ‘साहित्यिक प्रक्रिया के मूल’ में निवास करती है। मनुष्य मात्र की आनन्द की स्वाभाविक भूमि ‘रस’ है जो किसी भी श्रेष्ठ साहित्य की ‘आत्मा’ होती है। साहित्य में आध्यात्मिक का कार्य मानवीय गुणों को समन्वित करना है उसी प्रकार लौकिकता का अभिप्राय उसकी मानवीयता है। इसी प्रकार राजनीति और साहित्य के रिश्तों के बारे में उनका मानना है कि “राजनीति का लक्ष्य जन-समाज के बाहरी जीवन के हितों को देखना, उनकी रक्षा करना और उनका संवर्धन करना है, जबकि साहित्यिक का लक्ष्य समाज को ऐसी प्रेरणा देना है कि सामाजिक स्वयं अपने हितों और अधिकारों को समझ सकें और अपने दायित्वों के प्रति सजग हो सकें।”⁶ यहाँ वाजपेयी जी साहित्य के वृहत्तर उत्तरदायित्वों के प्रति संकेत करते हैं। साथ ही वे भी बताते हैं कि राजनीति और साहित्य के इन लक्ष्यों या प्रयोजनों में एक भटकाव की स्थिति है। यह भटकाव का मुख्य कारण राजनीति का अपने धर्म से विमुख होना है। यदि इस लक्ष्य विमुख राजनीति का अपने धर्म से विमुख होता है। यदि इस लक्ष्य विमुख राजनीति को साहित्य अपनाता है तो वह भी अपनी गरीमा को खो देगा। इससे सबसे बड़ी हानि यह हुई कि साहित्य में राष्ट्रीय चेतना का राष्ट्र निर्माण का भाव कम हो गया। कुछ पाश्चात्य विचारधाराएँ जैसे मार्क्सवाद या मनोविश्लेषणवाद के आगमन से कुछ बौद्धिक उत्थान तो हुआ किन्तु राष्ट्रीय जीवन की प्रशस्त भूमिका तैयार नहीं हो पायी। वे साहित्य की मौजूदा स्थिति-बोध को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि “स्वराज्य मिलने के पश्चात् साहित्य के जो व्यवहारिक अंग हैं- ज्ञान-विज्ञान, दर्शन तथा विद्या के जो बहुमुखी क्षेत्र हैं - वे भी नये विकास की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके लिए जिस शांति और एकाग्रता की आवश्यकता है वह यथेष्ट मात्र में उपलब्ध नहीं हो रही है। देश के दुर्भाग्य से विघटनकारी प्रवृत्तियाँ इतनी बढ़ती जा रही हैं और सौमनस्य की इतनी कमी है कि एक प्रक्रियात्मक क्रान्ति या ‘काउन्टर रेवोल्यूशन’ की सी स्थिति समीप आ गयी है। संयोजित और सुनियोजित रूप में विभिन्न भाषाओं के विद्वानों द्वारा कोई संगठित प्रयास नहीं हो पा रहा है। इन विघटनकारी प्रवृत्तियों से अपनी और अपने देश की रक्षा करना आज साहित्यिकों का शायद सबसे बड़ा दायित्व है।”⁷ राजनीतिज्ञों और साहित्यिकों के दायित्वों के प्रति वाजपेयी जी की यह दृष्टि उन्हें अधुनातन और प्रगतिशील बनाती है।

आचार्य वाजपेयी साहित्य को जीवन के साथ भी रख कर देखते हैं। साहित्य और जीवन के रिश्ते के सन्दर्भ वे कहते हैं कि “जीवन तो एक धारा प्रवाह है, साहित्य में उसकी प्राणदायिनी और रमणीय बूँदे एकत्र की जाती है।..... सामयिक जीवन तो अनेक नियमित, अनियमित, ज्ञात-अज्ञात घटनावली का समष्टि रूप है। साहित्य में कुछ नियम भी अपेक्षित है। सामयिक जीवन का उनके लिए उतना ही महत्व है जितना वह उनके विराट्, सर्वकालीन यथार्थ जीवन की कल्पना में सहायक बन सकता है।”⁸ वाजपेयी जी का स्पष्ट रूप से मानना है कि साहित्य में मनुष्य का जीवन ही नहीं जीवन की वेशुमार इच्छाएँ भी निहित रहती हैं।

हिंदी समीक्षा में नंद दुलारे वाजपेयी के अवदान की चर्चा करते हुए डॉ. हौसिला प्रसाद सिंह ने उन्हें हिन्दी की प्रगतिशील आलोचना का मुख्य आधार स्तम्भ माना है। डॉ. सिंह ने आचार्य वाजपेयी की साहित्य

चिन्तन विचार करते हुए लिखा है कि “आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी हिन्दी साहित्य चिन्तन और समीक्षा में स्वच्छ मानव-मूल्यों के प्रथम पुरस्कर्ता हैं। वे छायावादी काव्य के सजग व्याख्याता और उसके स्वरूप तथा सौन्दर्य के निष्पक्ष-तटस्थ द्रष्टा हैं। उनके मान्यतानुसार छायावादी कविता विद्रोहात्मक और आत्मपरक है। वह राष्ट्रीय जागरण की प्रतिध्वनि है। उसमें करुणा, आशा और उत्तरदायित्व के स्वर प्रमुख हैं। उसमें मानव-जीवन की उदात्तता भी है जो भूले हुए गौरव का पथ निर्देश करते हैं, परिस्थितियों पर मानवता की विजय का संदेश देते हैं।”⁹ रामचन्द्र शुक्ल की मान्यताओं को नकारते हुए ‘हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी’ में वे लिखते हैं कि “स्थूल व्यवहारवाद को निस्सीम बतलाकर और रहस्यवाद की कन कौए से तुलना कर विद्वान् शुक्ल जी ने नवीन कविता के साथ अन्याय किया है।”¹⁰ इस निर्णय के बाद आचार्य वाजपेयी बहुत ही प्रभावशाली ढंग से छायावाद का पक्ष रखते हैं “छायावाद अथवा रहस्यवाद का क्षेत्र विस्तीर्ण है। मनुष्य के अध्यात्म पक्ष का सम्पूर्ण निरूपण इस प्रकार की कविता की सीमा के अन्तर्गत है और अध्यात्म पक्ष के अन्तर्गत समस्त जीवन की व्याख्या की जा चुकी है। हम जिस अर्थ में छायावाद अथवा रहस्यवाद को लेते हैं उसमें ब्लेक ही नहीं वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि अनेक प्रमुख कवियों की रचनाएँ आती हैं..... कवि शैली ने इस पार्थिव संसार से चिढ़कर, जो सौन्दर्यपूर्ण काल्पनिक सृष्टि की है वहाँ कवि की अध्यात्मोन्मुख भावना अपना मूल्य खो नहीं देती। वह भी छायावाद है।”¹¹

आचार्य शुक्ल का छायावाद विरोध जगजाहिर है। ठीक उसी तरह आचार्य वाजपेयी का छायावाद का समर्थन भी महत्वपूर्ण है। ऐसे में निश्चित ही दोनों आचार्यों की टकराहट होनी थी। आचार्य शुक्ल छायावाद का विरोध उसकी रहस्यभावना को लेकर करते हैं। ‘काव्य में रहस्यवाद’ की चर्चा करते हुए उसका विरोध इसलिए करते हैं कि उन्हें इस ‘जगत के नाना रूपों और व्यापारों से प्रेम’ है, वे उसके ‘प्रकृत संबंध का सौन्दर्य’ देखना चाहते हैं, वह भी इसलिए कि “इस सौन्दर्य के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार और जगत् के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।”¹² दूसरे यह कि छायावाद का समय स्वाधीनता संग्राम और राष्ट्रीय स्वाभिमान का है जिस ओर छायावादी कवियों का ध्यान प्रमुखता से नहीं गया। आचार्य शुक्ल द्वारा छायावाद के विरोध का एक कारण यह भी है। वे छायावाद को रहस्यवाद से अलग नहीं मानते। छायावाद के सन्दर्भ में आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि “छायावाद नाम चलने का परिणाम यह हुआ कि बहुत से कवि रहस्यात्मकता, अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्रा, वस्तु विन्यास की विश्रृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना को साध्य मानकर चले। शैली की इन विशेषताओं की दूरारूढ़ साधना में लीन हो जाने के कारण अर्थभूमि के विस्तार की ओर उनकी दृष्टि न रही। विभाव पक्ष या तो शून्य अथवा अनिर्दिष्ट रह गया।..... असीम और अज्ञात प्रियतम के प्रति चित्रमयी भाषा में अनेक प्रकार के प्रेमोद्गारों तक ही काव्य की गतिविधि प्रायः बँध गई।”¹³ इसके साथ आचार्य शुक्ल छायावाद के संदर्भ में यह निर्णय देते हैं कि यह काव्य शैली योरोप से बंगाल होती हुई हिन्दी में आयी। इस पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव स्वीकार करते हैं। यहाँ एक खास बात यह है कि आचार्य शुक्ल छायावाद को ‘काव्य शैली’ मात्र मानते हैं। यदि छायावाद एक विशिष्ट काव्य शैली है तो निश्चित ही उसकी एक विशिष्ट भावभूमि के संदर्भ में स्पष्ट रूप से कोई बात नहीं करते। छायावाद की उस महत्वपूर्ण भावबोध या भावभूमि को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी स्पष्ट रूप से स्वीकारते हैं कि “नई छायावादी काव्यधारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है, परंतु उसी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं। आधुनिक और

समीक्षा-पद्धति पर चलने में प्रकट हुई हैं वाजपेयी जी को इस बात का श्रेय मिलेगा कि छायावाद, प्रगतिवाद, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. रामचंद्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, दिनकर की और प्रयोगवादी रचनाओं की उन्होंने गंभीर या विस्तृत समीक्षा की।¹⁸

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की आलोचना-पद्धति व्यक्तित्व-प्रधान, सौंदर्य बोधात्मक समीक्षा शैली से आरंभ होकर 'सप्तसूत्री', वैचारिक, सूत्रात्मक तथा सौष्ठववादी शैलियों तक फैली है। उनके समीक्षात्मक साहित्य की केन्द्रीय धूरी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय जीवन के विविध आयाम रहे हैं। आचार्य वाजपेयी के विपुल लेखन से हिन्दी आलोचना का स्वायत्त स्वरूप निर्मित हुआ, जो एक उपलब्धि की तरह है।

हिन्दी विभाग

डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.) 470003

सन्दर्भ -

1. नवल नंदकिशोर, हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 158
2. वही, पृ. 158
3. वाजपेयी नंद दुलारे, नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ. 136
4. सिंह हौसिला प्रसाद, प्रगतिशील हिंदी आलोचना की रचना प्रक्रिया, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1991, पृ. 77
5. वाजपेयी नंद दुलारे, आधुनिक काव्य : रचना और विचार, पृ. 2 (भूमिका)
6. वही, पृ. 2
7. वही, पृ. 8-9
8. वही, पृ. 14
9. सिंह हौसिला प्रसाद, प्रगतिशील हिंदी आलोचना की रचना प्रक्रिया, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1991, पृ. 84
10. वाजपेयी नंद दुलारे, हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ. 65
11. वही, पृ. 65
12. शुक्ल रामचंद्र चिंतामणि (भाग-2), पृ. 36
13. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा-काशी, पृ. 599
14. वाजपेयी नंद दुलारे, आधुनिक साहित्य, पृ. 319-320
15. वाजपेयी नंद दुलारे, हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ. 161
16. वाजपेयी नंद दुलारे, आधुनिक साहित्य, पृ. 329
17. वही, पृ. 197
18. त्रिपाठी विश्वनाथ, हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2006, पृ. 140